

संवैधानिक नैतिकता और भारतीय राष्ट्रवाद: डॉ. भीमराव अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन के संदर्भ में

अरविन्द कुमार यादव¹, डॉ. शैलेश कुमार²

¹शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज, गोंडा।

²शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री डिग्री कॉलेज, गोंडा।

Email: aky82951@gmail.com, Email: sg7906777@gmail.com



Received 05 June 2026

Accepted 12 June 2026

Published 30 June 2026

Corresponding Author:

अरविन्द कुमार यादव

Email: aky82951@gmail.com

DOI: <https://doi.org/10.64880/pcjaict.v1i2.03>

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sector.

Copyright: © 2026 The Author(s).



This is an open access article under the [Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/).

OPEN ACCESS

सारांश:

डॉ. भीमराव अंबेडकर का राजनीतिक दर्शन भारतीय लोकतंत्र को केवल शासन-पद्धति के रूप में नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण सामाजिक जीवन की व्यापक परियोजना के रूप में देखता है। इस परियोजना में संवैधानिक नैतिकता का विशेष स्थान है। अंबेडकर ने 4 नवम्बर 1948 को संविधान सभा में जॉर्ज ग्रोट की व्याख्या का उल्लेख करते हुए संवैधानिक रूपों के प्रति सम्मान, संवैधानिक अधिकार-सीमाओं के भीतर सत्ता का प्रयोग, खुली अभिव्यक्ति तथा सार्वजनिक अधिकारियों की आलोचना की स्वतंत्रता को संवैधानिक नैतिकता के आवश्यक तत्वों के रूप में रेखांकित किया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि संवैधानिक नैतिकता कोई स्वाभाविक भावना नहीं है; इसे विकसित करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध-लेख का उद्देश्य अंबेडकर की संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा को भारतीय राष्ट्रवाद, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के संदर्भ में विश्लेषित करना है। अध्ययन ऐतिहासिक, दार्शनिक और विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है तथा अंबेडकर के मूल लेखन और संविधान सभा के भाषणों को प्राथमिक स्रोत के रूप में ग्रहण करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अंबेडकर के लिए राष्ट्र की लोकतांत्रिक एकता बहुमत की इच्छा मात्र पर आधारित नहीं हो सकती; उसे संविधानसम्मत सत्ता, समान नागरिकता, अल्पसंख्यक अधिकारों, सामाजिक लोकतंत्र और संस्थागत उत्तरदायित्व का आधार चाहिए। इस दृष्टि से संवैधानिक नैतिकता भारतीय राष्ट्रवाद को विधि के शासन, नागरिक गरिमा और लोकतांत्रिक सह-अस्तित्व से जोड़ने वाला महत्वपूर्ण नैतिक-राजनीतिक सिद्धांत है।

मुख्य शब्द: डॉ. बी. आर. अंबेडकर, संवैधानिक नैतिकता, भारतीय राष्ट्रवाद, सामाजिक लोकतंत्र, संवैधानिक राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय, समानता, बंधुत्व।

1. **प्रस्तावना:** भारत का राष्ट्रीय आंदोलन राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा का प्रतीक था, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही यह प्रश्न भी सामने आया कि विविध भाषाओं, धर्मों, जातियों, क्षेत्रों और सामाजिक समूहों वाले समाज को किस प्रकार एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में संगठित किया जाए। औपनिवेशिक

शासन का अंत राष्ट्रीय स्वतंत्रता की आवश्यक उपलब्धि थी, परंतु राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया इसके बाद भी जारी रहने वाली थी। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इस समस्या को सामाजिक संरचना, राजनीतिक संस्थाओं और नागरिक अधिकारों के परस्पर संबंध में समझा। उनके लिए संविधान केवल शासन की तकनीकी व्यवस्था नहीं था; वह ऐसी सार्वजनिक व्यवस्था का आधार था जिसमें सत्ता सीमित हो, अधिकार सुरक्षित हों और प्रत्येक नागरिक की गरिमा को मान्यता प्राप्त हो।

अंबेडकर के राजनीतिक चिंतन में संवैधानिक नैतिकता इसी व्यापक लोकतांत्रिक परियोजना का प्रमुख तत्त्व है। 4 नवम्बर 1948 को संविधान सभा में प्रारूप संविधान प्रस्तुत करते समय उन्होंने इतिहासकार जॉर्ज ग्रोट के विचार का उल्लेख किया और संवैधानिक नैतिकता को स्वतंत्र तथा शांतिपूर्ण शासन की आवश्यक शर्त के रूप में प्रस्तुत किया। अंबेडकर ने विशेष रूप से कहा कि संवैधानिक नैतिकता स्वाभाविक भावना नहीं है, बल्कि उसे विकसित करना पड़ता है। इस कथन का महत्त्व इसलिए अधिक है क्योंकि यह संविधान की सफलता को केवल उसके लिखित प्रावधानों पर निर्भर नहीं मानता; वह नागरिकों, राजनीतिक दलों, विधायिका, कार्यपालिका और सार्वजनिक संस्थाओं के व्यवहार को भी उतना ही महत्त्व देता है।

भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में यह विचार एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है: क्या राष्ट्रीय एकता केवल भावनात्मक देशभक्ति अथवा राजनीतिक सीमाओं की अखंडता से निर्मित होती है, या उसके लिए नागरिकों में समानता, न्याय, अधिकारों का सम्मान और संवैधानिक संस्थाओं पर विश्वास भी आवश्यक है? अंबेडकर के लेखन का अध्ययन बताता है कि राष्ट्र की स्थिरता सामाजिक लोकतंत्र और संवैधानिक आचरण से जुड़ी है। अतः संवैधानिक नैतिकता को भारतीय राष्ट्रवाद के लोकतांत्रिक और समावेशी स्वरूप की एक आधारभूत शर्त के रूप में पढ़ा जा सकता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

1. डॉ. अंबेडकर की संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा का विश्लेषण करना।
2. संवैधानिक नैतिकता और भारतीय राष्ट्रवाद के अंतर्संबंध को स्पष्ट करना।
3. अंबेडकर के सामाजिक लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व संबंधी विचारों को संवैधानिक राष्ट्रवाद के संदर्भ में समझना।
4. जाति, सामाजिक न्याय, बहुमत-अल्पसंख्यक संबंध और लोकतांत्रिक नागरिकता के संदर्भ में संवैधानिक नैतिकता की भूमिका का विवेचन करना।
5. समकालीन भारतीय लोकतंत्र में अंबेडकर की संवैधानिक नैतिकता की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

3. संवैधानिक नैतिकता: अवधारणा और वैचारिक आधार

संवैधानिक नैतिकता का सामान्य अर्थ संविधान के शब्दों का यांत्रिक पालन मात्र नहीं है। यह उस आचरण-संस्कृति को व्यक्त करती है जिसमें शासन करने वाले और शासित दोनों संविधान द्वारा निर्धारित संस्थागत सीमाओं, प्रक्रियाओं और मूल्यों को स्वीकार करते हैं। अंबेडकर ने संविधान सभा में जॉर्ज ग्रोट की परिभाषा का सहारा लेते हुए संवैधानिक रूपों के प्रति सर्वोच्च सम्मान, विधिसम्मत प्राधिकार के प्रति आज्ञापालन, खुली अभिव्यक्ति, विधि द्वारा नियंत्रित राजनीतिक क्रिया और सार्वजनिक अधिकारियों के कार्यों की निर्बाध आलोचना जैसे तत्वों पर बल दिया। इसका आशय यह है कि लोकतंत्र में सत्ता का सम्मान और सत्ता की आलोचना एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं; दोनों संविधान द्वारा निर्मित लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंग हैं।

इस अवधारणा का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों के बीच संवैधानिक नियमों पर साझा विश्वास है। लोकतंत्र में दलों और समूहों के हित अलग हो सकते हैं, परंतु यदि प्रत्येक पक्ष यह मानता है कि विरोधी भी सत्ता में आने पर संविधान की प्रक्रियाओं और सीमाओं का सम्मान करेगा, तो राजनीतिक प्रतिस्पर्धा हिंसक संघर्ष में परिवर्तित होने से बच सकती है। इस अर्थ में संवैधानिक नैतिकता लोकतांत्रिक विश्वास की संस्कृति है। वह यह स्वीकार करती है कि राजनीतिक असहमति राष्ट्र-विरोध नहीं, बल्कि संविधानसम्मत सार्वजनिक जीवन का स्वाभाविक भाग हो सकती है।

अंबेडकर ने इस बात पर भी ध्यान दिलाया कि संविधान की संरचना और प्रशासन की वास्तविक कार्यप्रणाली में सामंजस्य होना चाहिए। उनके अनुसार संविधान का औपचारिक रूप बदले बिना भी प्रशासनिक व्यवहार के माध्यम से उसकी भावना को विकृत किया जा सकता है। इसलिए संवैधानिक नैतिकता केवल न्यायालयों अथवा विधि-विशेषज्ञों की चिंता नहीं है; वह प्रशासन, राजनीति और नागरिक संस्कृति से संबंधित है।

4. अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन में संविधान का स्थान

अंबेडकर की संवैधानिक दृष्टि व्यक्ति की स्वतंत्रता और राज्य की शक्ति के बीच संस्थागत संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। उनके चिंतन में राज्य सामाजिक परिवर्तन का साधन हो सकता है, किंतु उसकी शक्ति अनियंत्रित नहीं होनी चाहिए। संविधान शासन की संस्थाओं को अधिकार देता है, साथ ही उन अधिकारों की सीमाएँ भी निर्धारित करता है। मौलिक अधिकार, प्रतिनिधिक शासन, न्यायपालिका, विधायिका और संघीय संरचना जैसी व्यवस्थाएँ नागरिक और राज्य के संबंधों को विधिक रूप प्रदान करती हैं।

अंबेडकर के लिए संविधान की गुणवत्ता केवल उसके पाठ से निर्धारित नहीं होती। 25 नवम्बर 1949 के संविधान सभा भाषण में उन्होंने संकेत किया कि कोई संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, उसका संचालन करने वाले लोग यदि अनुचित आचरण करें तो परिणाम खराब हो सकता है; और कमतर समझा जाने वाला संविधान भी अच्छे संवैधानिक आचरण से बेहतर परिणाम दे सकता है। इस विचार का केंद्रीय संदेश संस्थागत नैतिकता और सार्वजनिक उत्तरदायित्व है। संविधान को जीवित लोकतांत्रिक व्यवस्था बनाने के लिए राजनीतिक व्यवहार को संवैधानिक सीमाओं में रहना आवश्यक है।

यहीं से संवैधानिक नैतिकता राष्ट्रवाद से जुड़ती है। यदि राष्ट्र के प्रति निष्ठा को संविधान और नागरिकों के समान अधिकारों से पृथक कर दिया जाए, तो राष्ट्रीयता का भाव बहुमतवादी या शक्ति-केंद्रित रूप ग्रहण कर सकता है। इसके विपरीत, संवैधानिक दृष्टि राष्ट्र को ऐसे राजनीतिक समुदाय के रूप में समझने की संभावना देती है जिसमें भिन्नताओं के बावजूद सभी नागरिक समान विधिक और नैतिक स्थिति रखते हैं।

5. भारतीय राष्ट्रवाद और संवैधानिक नैतिकता का संबंध

अंबेडकर के चिंतन से प्रेरित संवैधानिक राष्ट्रवाद में राष्ट्र की एकता किसी एक सांस्कृतिक पहचान की अनिवार्य समानता पर निर्भर नहीं करती। भारत की बहुलता को देखते हुए राष्ट्रीय समुदाय की स्थिरता के लिए ऐसा साझा ढाँचा आवश्यक है जिसमें विभिन्न समूह स्वयं को समान अधिकारों वाले नागरिक के रूप में देख सकें। संविधान ऐसा सार्वजनिक आधार प्रदान करता है। वह नागरिकता, अधिकार, संस्थागत प्रक्रिया और राज्य की जवाबदेही के माध्यम से विविध समाज को साझा राजनीतिक समुदाय में संगठित करता है।

इस दृष्टि में संवैधानिक नैतिकता राष्ट्रवाद को दो महत्वपूर्ण अनुशासन प्रदान करती है। पहला, राष्ट्र के नाम पर प्रयोग की जाने वाली राजनीतिक शक्ति भी संवैधानिक सीमाओं के अधीन रहती है। दूसरा, राष्ट्रीय एकता का अर्थ आलोचना, असहमति या विविध पहचान का उन्मूलन नहीं है। लोकतांत्रिक राष्ट्र में असहमति को विधि और संवैधानिक प्रक्रियाओं के भीतर व्यक्त करने का अधिकार राजनीतिक समुदाय की परिपक्वता का संकेत है। इस प्रकार संवैधानिक नैतिकता राष्ट्रवाद को शक्ति के केंद्रीकरण के बजाय उत्तरदायित्व और नियमबद्धता से जोड़ती है।

अंबेडकर की चिंता यह भी थी कि सामाजिक विभाजन राजनीतिक लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर कर सकते हैं। यदि संविधान समान नागरिकता घोषित करे, लेकिन सामाजिक जीवन जन्म-आधारित असमानता और बहिष्करण पर चलता रहे, तो राष्ट्र की लोकतांत्रिक एकता अधूरी रहेगी। इसलिए संवैधानिक राष्ट्रवाद की सामाजिक भूमि समानता और बंधुत्व में खोजी जानी चाहिए।

6. सामाजिक लोकतंत्र: संवैधानिक राष्ट्रवाद की सामाजिक आधारभूमि

25 नवम्बर 1949 को अंबेडकर ने राजनीतिक लोकतंत्र को टिकाऊ बनाने के लिए सामाजिक लोकतंत्र की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने सामाजिक लोकतंत्र को ऐसी जीवन-पद्धति से जोड़ा जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह

स्थापना संवैधानिक नैतिकता की सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। संविधान नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार दे सकता है, लेकिन यदि समाज में सामाजिक सम्मान, अवसर और सहभागिता अत्यधिक असमान हों तो लोकतांत्रिक नागरिकता का वास्तविक अनुभव सीमित हो जाता है।

अंबेडकर ने राजनीतिक समानता और सामाजिक-आर्थिक असमानता के अंतर्विरोध की ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया। सार्वभौमिक मताधिकार राजनीतिक क्षेत्र में प्रत्येक वयस्क नागरिक को समान मूल्य देता है, किंतु सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में गहरी विषमताएँ बनी रहें तो लोकतंत्र तनावग्रस्त हो सकता है। इसलिए सामाजिक लोकतंत्र राष्ट्रवाद की विरोधी परियोजना नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक राष्ट्र की स्थिरता का आधार है। सामाजिक न्याय से वंचित नागरिकों में राष्ट्र के प्रति साझा सदस्यता की भावना केवल प्रतीकात्मक अपील से स्थायी नहीं की जा सकती।

इस प्रकार अंबेडकर के विचार में संविधान और समाज के बीच द्विपक्षीय संबंध है। संविधान सामाजिक परिवर्तन के लिए अधिकार और संस्थागत साधन देता है, जबकि लोकतांत्रिक समाज संवैधानिक संस्थाओं को टिकाऊ बनाता है। संवैधानिक नैतिकता इन दोनों को जोड़ने वाली नागरिक संस्कृति है।

7. स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व

अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को अलग-अलग और प्रतिस्पर्धी मूल्यों के रूप में नहीं देखा गया। उन्होंने इन्हें परस्पर संबद्ध त्रयी माना। समानता से पृथक स्वतंत्रता सामाजिक और आर्थिक शक्ति रखने वालों के प्रभुत्व को बढ़ा सकती है; स्वतंत्रता से पृथक समानता व्यक्तिगत पहल और स्वायत्तता को सीमित कर सकती है; और बंधुत्व के बिना दोनों मूल्यों को सामाजिक जीवन में स्थायी आधार प्राप्त करना कठिन होता है। इस त्रयी में संवैधानिक नैतिकता का नैतिक सार दिखाई देता है।

राष्ट्रवाद के संदर्भ में स्वतंत्रता नागरिक को विचार, अभिव्यक्ति और राजनीतिक सहभागिता का क्षेत्र देती है। समानता यह सुनिश्चित करने का आदर्श प्रस्तुत करती है कि राष्ट्र की सदस्यता किसी व्यक्ति की जाति, जन्म अथवा सामाजिक स्थिति के आधार पर कमतर न हो। बंधुत्व नागरिकों में साझा जीवन और परस्पर सम्मान की भावना विकसित करता है। इन तीनों का संतुलन राष्ट्रवाद को समावेशी लोकतांत्रिक रूप देता है।

बंधुत्व विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि संविधान की विधिक समानता को सामाजिक व्यवहार में रूपांतरित करने के लिए केवल दंडात्मक कानून पर्याप्त नहीं होते। नागरिकों को एक-दूसरे की गरिमा स्वीकार करनी होती है। अंबेडकर के लिए बंधुत्व का यही अर्थ राष्ट्रीय एकता के सामाजिक आधार से जुड़ता है।

8. जाति-व्यवस्था और संवैधानिक राष्ट्रवाद की चुनौती

अंबेडकर की जाति-व्यवस्था संबंधी आलोचना उनके राष्ट्रवाद को समझने की कुंजी है। Annihilation of Caste में उन्होंने जाति को श्रम-विभाजन मात्र न मानकर श्रमिकों का विभाजन और श्रेणीबद्ध सामाजिक संरचना बताया। जाति समूहों के बीच सामाजिक संपर्क, वैवाहिक संबंध और साझा जीवन को सीमित करती है। ऐसी संरचना में व्यक्ति व्यापक नागरिक समुदाय से पहले संकीर्ण सामाजिक समूह के भीतर बंधा रहता है।

संवैधानिक नैतिकता का सिद्धांत जाति-आधारित विशेषाधिकार से मूलतः तनाव में है, क्योंकि संविधान नागरिकों को विधिक समानता के आधार पर देखता है। यदि सार्वजनिक संस्थाओं में जन्म-आधारित श्रेष्ठता या हीनता का व्यवहार प्रवेश करता है, तो संविधान की लोकतांत्रिक भावना प्रभावित होती है। अतः जाति-विरोधी सामाजिक परिवर्तन को अंबेडकर के संवैधानिक राष्ट्रवाद से अलग नहीं किया जा सकता।

यहाँ राष्ट्रीय एकता की अवधारणा भी पुनर्परिभाषित होती है। एकता का अर्थ सामाजिक असमानताओं पर मौन सहमति नहीं, बल्कि उन बाधाओं को दूर करना है जो नागरिकों को समान सदस्यता से वंचित करती हैं। न्यायपूर्ण सामाजिक संबंध राष्ट्रीय एकजुटता को अधिक गहरा आधार प्रदान करते हैं।

9. बहुमत, अल्पसंख्यक और लोकतांत्रिक राष्ट्र

अंबेडकर का राजनीतिक चिंतन बहुमत के शासन और लोकतंत्र को समानार्थी नहीं मानता। चुनावी बहुमत शासन बनाने का वैध माध्यम है, परंतु लोकतांत्रिक सत्ता संवैधानिक सीमाओं के अधीन रहती है। अल्पसंख्यकों के अधिकार, नागरिक स्वतंत्रता और प्रतिनिधित्व का प्रश्न इसी कारण महत्वपूर्ण

है। संवैधानिक नैतिकता बहुमत को यह स्मरण कराती है कि राजनीतिक शक्ति संपूर्ण नागरिक समुदाय की ओर से और निर्धारित सीमाओं के भीतर प्रयोग की जाती है।

राष्ट्रवाद के संदर्भ में यह सिद्धांत विशेष महत्त्व रखता है। यदि राष्ट्र को केवल संख्यात्मक बहुमत की इच्छा से परिभाषित किया जाए, तो विविध समाज में कुछ समूह स्थायी रूप से हाशिये पर जा सकते हैं। इसके विपरीत संवैधानिक राष्ट्रवाद नागरिकता की समानता को आधार बनाता है। व्यक्ति की धार्मिक, भाषायी, जातीय या सांस्कृतिक पहचान उसकी मूल नागरिक गरिमा को कम नहीं करती।

अंबेडकर की संस्थागत दृष्टि इसी कारण प्रतिनिधित्व और अधिकार-सुरक्षा पर बल देती है। लोकतंत्र में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा स्वीकार्य है, किंतु प्रतिस्पर्धा की सीमाएँ संविधान तय करता है। यह व्यवस्था राष्ट्र को एक ऐसे साझा सार्वजनिक क्षेत्र में बदलती है जहाँ विविध हित शांतिपूर्ण संवैधानिक प्रक्रिया से व्यक्त और समायोजित किए जा सकते हैं।

10. संवैधानिक पद्धतियाँ और लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति

25 नवम्बर 1949 के भाषण में अंबेडकर ने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संवैधानिक पद्धतियों को अपनाने पर बल दिया। स्वतंत्र लोकतांत्रिक व्यवस्था में, जहाँ संवैधानिक माध्यम उपलब्ध हों, राजनीति को संस्थागत प्रक्रिया के भीतर संचालित करना उनके लिए आवश्यक था। यह आग्रह कानून के प्रति निष्क्रिय आज्ञाकारिता नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक परिवर्तन को नियमबद्ध, उत्तरदायी और शांतिपूर्ण बनाए रखने का सिद्धांत है।

उन्होंने राजनीति में व्यक्ति-पूजा के जोखिम के प्रति भी सावधान किया। लोकतांत्रिक राष्ट्रवाद के लिए यह चेतावनी महत्वपूर्ण है, क्योंकि राष्ट्र की संस्थाओं को किसी एक नेता के व्यक्तित्व से ऊपर रखना संवैधानिक स्थिरता की शर्त है। सार्वजनिक नेतृत्व के प्रति सम्मान लोकतांत्रिक आलोचना और संस्थागत नियंत्रण को समाप्त नहीं कर सकता। संवैधानिक नैतिकता इसी संतुलन की माँग करती है।

इस प्रकार लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति में नागरिक न तो सत्ता को निरंकुश मानते हैं और न ही प्रत्येक राजनीतिक मतभेद को व्यवस्था-विरोधी संघर्ष में बदलते हैं। वे संवैधानिक साधनों, सार्वजनिक तर्क, चुनाव, विधायिका, न्यायिक प्रक्रिया और शांतिपूर्ण नागरिक सहभागिता के माध्यम से परिवर्तन की दिशा तय करते हैं।

11. संवैधानिक नैतिकता और सामाजिक न्याय

संवैधानिक नैतिकता का सामाजिक न्याय से गहरा संबंध है। यदि संविधान समानता, स्वतंत्रता और गरिमा को मान्यता देता है, तो राज्य की नीतियों और सार्वजनिक संस्थाओं का संचालन भी इन मूल्यों के अनुरूप होना चाहिए। अंबेडकर की राजनीतिक परियोजना में वंचित समुदायों के अधिकार, प्रतिनिधित्व और अवसर केवल सामाजिक कल्याण के प्रश्न नहीं थे; वे लोकतांत्रिक नागरिकता की वास्तविकता से जुड़े थे।

सामाजिक न्याय संवैधानिक राष्ट्रवाद को समावेशी बनाता है। राष्ट्र के सभी नागरिकों को केवल समान कर्तव्यों की अपेक्षा के आधार पर नहीं, बल्कि समान अधिकारों और न्यायपूर्ण अवसरों के आधार पर भी जोड़ा जाता है। यह दृष्टि राष्ट्रीय एकता को न्याय से पृथक नहीं करती। जब नागरिक अनुभव करते हैं कि संस्थाएँ उनकी गरिमा की रक्षा करती हैं और शिकायतों के समाधान के लिए निष्पक्ष संवैधानिक मार्ग उपलब्ध हैं, तो राजनीतिक समुदाय के प्रति विश्वास मजबूत हो सकता है।

अतः अंबेडकर के संदर्भ में संवैधानिक नैतिकता औपचारिक प्रक्रिया और सामाजिक परिणाम के बीच सेतु का कार्य करती है। वह यह अपेक्षा करती है कि सत्ता संविधान की सीमाओं में चले और संविधान में व्यक्त लोकतांत्रिक मूल्यों को सामाजिक जीवन में साकार करने की दिशा में कार्य करे।

12. समकालीन भारत में प्रासंगिकता

समकालीन भारत में संवैधानिक नैतिकता की प्रासंगिकता को किसी विशिष्ट दल या सरकार के मूल्यांकन तक सीमित करना उचित नहीं होगा। यह एक व्यापक लोकतांत्रिक मानदंड है जो सत्ता में रहने वाले प्रत्येक राजनीतिक समूह, विपक्ष, सार्वजनिक संस्थाओं और नागरिकों पर समान रूप से लागू होता है।

विधि के शासन, संस्थागत उत्तरदायित्व, नागरिक स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण असहमति और संवैधानिक प्रक्रियाओं का सम्मान किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र के स्थायित्व के लिए आवश्यक हैं।

भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता इस अवधारणा को और महत्वपूर्ण बनाती है। संविधान विभिन्न पहचान वाले नागरिकों के लिए साझा राजनीतिक भाषा प्रदान करता है। जब राष्ट्रीयता को समान नागरिकता, मौलिक अधिकारों और लोकतांत्रिक सहभागिता से जोड़ा जाता है, तब विविधता और राष्ट्रीय एकता को अनिवार्य रूप से विरोधी मानने की आवश्यकता नहीं रहती। संवैधानिक ढाँचा विविधताओं के बीच सह-अस्तित्व के नियम निर्मित करता है।

अंबेडकर का यह आग्रह कि संवैधानिक नैतिकता को विकसित करना पड़ता है, आज भी नागरिक शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण संकेत देता है। संविधान की जानकारी पर्याप्त नहीं; लोकतांत्रिक व्यवहार, असहमति के प्रति सहिष्णुता, सार्वजनिक तर्क, संस्थागत सीमाओं का सम्मान और दूसरे नागरिक की समान गरिमा की स्वीकृति भी आवश्यक है। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों और नागरिक संस्थाओं में संवैधानिक मूल्यों की शिक्षा इस संस्कृति के विकास में योगदान दे सकती है।

13. विमर्श

अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन का विश्लेषण यह दर्शाता है कि संवैधानिक नैतिकता और राष्ट्रवाद का संबंध केवल विधिक नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक भी है। संविधान राज्य को संस्थागत रूप देता है, परंतु राष्ट्र नागरिकों के बीच जीवंत संबंधों से बनता है। यदि ये संबंध स्थायी अपमान, असमानता और बहिष्करण पर आधारित हों, तो संविधान का लोकतांत्रिक वादा अधूरा रह जाता है। इसलिए अंबेडकर सामाजिक लोकतंत्र को राजनीतिक लोकतंत्र की आधारभूमि मानते हैं।

संवैधानिक राष्ट्रवाद की इस व्याख्या में देश के प्रति प्रतिबद्धता और सत्ता की आलोचना परस्पर विरोधी नहीं हैं। संवैधानिक व्यवस्था स्वयं खुली अभिव्यक्ति, सार्वजनिक आलोचना और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के लिए स्थान बनाती है। राष्ट्र के प्रति लोकतांत्रिक निष्ठा का अर्थ उन संस्थाओं और मूल्यों की रक्षा भी है जो नागरिकों को स्वतंत्र और समान सदस्य बनाते हैं।

इसी प्रकार राष्ट्रीय एकता और अल्पसंख्यक अधिकारों को विरोधी ध्रुवों के रूप में देखने की आवश्यकता नहीं है। अधिकार-सुरक्षा विविध समुदायों को साझा राजनीतिक व्यवस्था में विश्वास दिलाने का माध्यम बन सकती है। अंबेडकर का योगदान इस बात में है कि वे लोकतंत्र को केवल बहुमत के शासन से आगे ले जाकर सामाजिक न्याय, संस्थागत मर्यादा और नागरिक बंधुत्व से जोड़ते हैं।

14. निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अंबेडकर के राजनीतिक दर्शन में संवैधानिक नैतिकता भारतीय लोकतंत्र और राष्ट्र-निर्माण को समझने की एक केंद्रीय अवधारणा है। इसका आशय संविधान के पाठ के प्रति औपचारिक निष्ठा तक सीमित नहीं है। यह संवैधानिक प्रक्रियाओं का सम्मान, सत्ता का सीमित और उत्तरदायी प्रयोग, खुली अभिव्यक्ति, सार्वजनिक आलोचना, विधि का शासन और राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों के बीच साझा संवैधानिक विश्वास की संस्कृति को समाहित करती है। अंबेडकर का कथन कि संवैधानिक नैतिकता स्वाभाविक भावना नहीं है और उसे विकसित करना पड़ता है, लोकतंत्र को निरंतर नागरिक अभ्यास के रूप में समझने की दिशा देता है।

भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में इस अवधारणा का महत्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि भारत बहुल सामाजिक संरचना वाला राष्ट्र है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय एकता का स्थायी आधार केवल सांस्कृतिक समानता अथवा राजनीतिक शक्ति नहीं हो सकता। समान नागरिकता, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व राष्ट्रीय समुदाय को लोकतांत्रिक आधार प्रदान करते हैं। अंबेडकर का राष्ट्रवाद इस प्रकार संविधान और समाज के बीच सेतु स्थापित करता है।

अंततः कहा जा सकता है कि अंबेडकर के विचार में संविधान राष्ट्र को केवल शासन की मशीनरी नहीं देता; वह नागरिकों के सह-अस्तित्व के लिए एक नैतिक-राजनीतिक अनुबंध भी निर्मित करता है। इस अनुबंध की सफलता संवैधानिक नैतिकता, सामाजिक लोकतंत्र और न्यायपूर्ण नागरिक संबंधों पर निर्भर है। इसलिए अंबेडकर का राजनीतिक दर्शन भारतीय राष्ट्रवाद को अधिकार, उत्तरदायित्व, विविधता और लोकतांत्रिक बंधुत्व के साथ समझने के लिए आज भी एक महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करता है।

संदर्भ सूची (APA शैली)

- अंबेडकर, बी. आर. (1936/2014). जाति का विनाश (Annihilation of caste). डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर: लेखन और भाषण (खंड 1) में। महाराष्ट्र सरकार।
- अंबेडकर, बी. आर. (1947/2014). राज्य और अल्पसंख्यक (States and minorities). डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर: लेखन और भाषण (खंड 1) में। महाराष्ट्र सरकार।
- अंबेडकर, बी. आर. (1948, 4 नवंबर). संविधान का मसौदा पेश करते हुए भाषण। संविधान सभा की बहस, खंड VIII।
- अंबेडकर, बी. आर. (1949, 25 नवंबर). संविधान सभा में भाषण। संविधान सभा की बहस, खंड XII।
- अंबेडकर, बी. आर. (2014). डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर: लेखन और भाषण (कई खंड)। महाराष्ट्र सरकार।
- ऑस्टिन, जी. (1966). भारतीय संविधान: एक राष्ट्र की आधारशिला (The Indian Constitution: Cornerstone of a nation). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- जाफरेलॉट, सी. (2005). डॉ. अंबेडकर और अस्पृश्यता: जाति का विश्लेषण और संघर्ष (Dr Ambedkar and untouchability: Analysing and fighting caste). परमानेंट ब्लैक।
- कीर, डी. (1954). डॉ. अंबेडकर: जीवन और मिशन (Dr. Ambedkar: Life and mission). पॉपुलर प्रकाशन।
- मेहता, पी. बी. (2010). संवैधानिक नैतिकता क्या है? (What is constitutional morality?). सेमिनार, 615।
- ओमवेड्ट, जी. (2004). अंबेडकर: एक प्रबुद्ध भारत की ओर (Ambedkar: Towards an enlightened India). पेंगुइन बुक्स इंडिया।
- रोड्रिग्स, वी. (संपादक). (2002). बी. आर. अंबेडकर के महत्वपूर्ण लेखन (The essential writings of B. R. Ambedkar). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- जेलियट, ई. (1992). अस्पृश्य से दलित तक: अंबेडकर आंदोलन पर निबंध (From untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar movement). मनोहर।

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, and opinions expressed in this publication are solely those of the author(s). The publisher and editorial team are not responsible for any errors, claims, or consequences arising from the use of the published content.